# अगली सदी का शोधपत्र

एक समय की बात है, हिंदुस्तान में एक भाषा हुआ करे थी। उसका नाम था हिंदी। हिंदुस्तान के लोग उस भाषा को दिलोजान से प्यार करते थे। बहुत सँभालकर रखते थे। कभी भूलकर भी उसका इस्तेमाल बोलचाल या लिखने-पढ़ने में नहीं करते थे। सिर्फ कुछ विशेष अवसरों पर ही वह लिखी-पढ़ी या बोली जाती थी। यहाँ तक कि साल में एक दिन, हफ्ता या पखवारा तय कर दिया जाता था। अपनी-अपनी फुरसत के हिसाब से और सबको खबर कर दी जाती थी कि इस दिन इतने बजकर इतने मिनट पर हिंदी पढ़ी-बोली और सुनी-समझी (?) जाएगी। निश्चित दिन, निश्चित समय पर बड़े सम्मान से हिंदी झाड़-पोंछकर तहखाने से निकाली जाती थी और सबको बोलकर सुनाई जाती थी।

ये दिन पूरे हिंदुस्तान में बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते थे। बच्चों से लेकर विशिष्ट अतिथि और आयोजनों के अध्यक्ष तक इस भाषा में बोली जानेवाली कविता, निबंध अथवा भाषणों का रद्दा मारा करते थे। चूँकि उस दिन रिवाज के मुताबिक आना-जाना, उठना-बैठना तथा हार पहनाना आदि सबकुछ हिंदी में होता था, अतः अनुवाद की निरंकुश अफरा-तफरी और बेचैनी मच जाती थी। अनुवादकों की बन आती थी। पलक झपकते शब्द-के-शब्द, वाक्य-के-वाक्य दल-बदल लेकर कायापलट तक कर जाया करते थे। देखते-देखते 'प्रपोजल' 'प्रस्ताव' में, 'रिक्वेस्ट' 'प्रार्थना' में, 'प्लीज' 'कृपया करके' में, 'थैंक्स' 'धन्यवाद' में और 'स्पीच' 'भाषण' में बदल जाते थे।

देखते-देखते परंपरा, संस्कृति, भाषा, संस्कार, समृद्ध साहित्य, आदर्श, राष्ट्रीयता, कटिबद्ध, एकसूत्रता आदि शब्दों का ट्रैफिक जाम हो जाया करता था। इनाम पर इनाम, तमगे पर तमगे बाँटे जाते थे। इस एक दिन हिंदी लाभ और मुनाफे की भाषा



S • S-Bayang •

हो जाया करती थी। इसका संपूर्ण व्यक्तित्व छूट और 'भव्य सेल' की चकाचौंध से जगमगा उठता था। लेकिन यह छूट सिर्फ इन्हीं दिनों के लिए थी। बाकी दिनों बात बिना बात हिंदी बोलने, इसे खर्च करने के जुर्म की सजा हर बेरोजगार, दकियानूसी और पिछड़े आदमी को भुगतनी पड़ती थी।

चूँकि यह भाषा समूचे हिंदुस्तान की गरिमा की प्रतीक थी, इसलिए इसे वातानुकूलित ऑफिसों की एयरटाइट फाइलों में बंद करके रखा जाता था। सरकार की तरफ से इसकी सुरक्षा के कड़े निर्देश थे। जेड क्लास सुरक्षा चक्रों के बीच, संसद् की बैठकों में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि 'माननीय सभासदो! माननीय अध्यक्षजी!' के अतिरिक्त सबकुछ अंग्रेजी में हो। इसलिए कुछेक सिरफिरों को छोड़कर सारे प्रस्ताव अंग्रेजी में ही प्रस्तावित और खारिज किए जाते थे। सारी-की-सारी योजनाएँ और बड़े-से-बड़े स्कैंडल अंग्रेजी में ही किए जाते थे; जैसे बोफोर्स। सिर्फ कुछ विशेष प्रकार के स्कैंडल हिंदी में होते थे, जैसे प्रतिभूति घोटाला। कम अंग्रेजी बोलते थे, जो हिंदीभाषी (पैदाइशी) थे, वे ज्यादा। क्योंकि उन्हें अपने पद की गोपनीयता की तरह ही अपनी भाषा की गोपनीयता बनाए रखने की चिंता सर्वोपरि थी।

उस सदी में पूरे देश में गणतंत्र लागू होने पर भी तथा सभी संभव प्रकार के घोटालों की पूरी छूट होते हुए भी हिंदी के मामले में सरकार के स्पष्ट अनुशासित और कड़े निर्देश थे कि खबरदार! हिंदी को कोई छूने न पाए। यह संपूर्ण राष्ट्र की अस्मिता का प्रश्न है। अत: साक्षात्कारों तथा स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के अध्ययन तक हिंदी के जरिए जो पहुँचने की कोशिश करेगा उसका प्रमोशन, परीक्षाफल, फाइल, आवेदन, अनुरोध, प्रार्थना तथा सारे अटके पड़े काम हमेशा के लिए अटके रह जाएँगे। वह लोगों द्वारा हेय दृष्टि से देखा जानेवाला उपेक्षा का पात्र होगा।

उस सदी में कुछ बड़े-बड़े लोगों के लिए ही हिंदी बोलने का कोटा निर्धारित किया जाता था। कोई बड़ा लेखक, राजनीतिज्ञ, अफसर या अहिंदीभाषी जब हिंदी बोलता तो तालियाँ पिट जाती थीं, लोग 'साधु-साधु' कह उठते थे; लेकिन वही हिंदी जब कोई सामान्य व्यक्ति बोलता तो वह उपहास, दया या उपेक्षा का पात्र समझा जाता था। इसलिए प्राय: ऐसे लोग अपने देश में अंग्रेजी और विदेशों में जाकर हिंदी बोल आया करते थे।

स्कूलों में भी इस भाषा पर कोई आँच न आने पाए, इसका पूरा ध्यान रखा जाता था और हिंदी की सारी पढ़ाई अंग्रेजी के माध्यम से करा दी जाती थी। आज



की बात और है। आज तो हिंदी भाषा का अस्तित्व समाप्त हो चुका है। हिंदी है ही नहीं। हिंदी इतिहास की, अतीत की भाषा हो चुकी है; लेकिन पिछली सदी में जब वर्तमान की भाषा थी तब भी सरकार और शिक्षाविदों ने ऐसी ईजाद कर ली थी कि बगैर हिंदी का एक शब्द भी खर्च किए हिंदी पढ़ा-लिखा दी जाती थी। उन दिनों माताओं के लिए सबसे ज्यादा गर्व की बात यही हुआ करती थी कि उनका बच्चा सिर्फ हिंदी में फेल हो गया। गोया हिंदी में फेल होना अन्य विषयों में पास होने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण था।

हमारी नवीनतम शोधें बताती हैं कि कुछ गलत दस्तावेजों और पुस्तकों के आधार पर हम हिंदी को बीसवीं शताब्दी के हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्कभाषा या मातृभाषा जैसा कुछ मान बैठते हैं। पर हकीकत तो यह है कि वह इनमें से कुछ भी नहीं थी। ये सारे तथ्य भ्रामक हैं। शोध बताती है कि दरअसल वह खास-खास अवसरों पर पहनी जानेवाली पोशाक थी, लगाया जानेवाला मुखौटा थी। वह एक डफली थी, जिसपर लोग अपने-अपने राग गाया करते थे। वह चश्मा थी, जिसे लगाकर अनुदानों, पुरस्कारों की छाया में सांस्कृतिक यात्राओं का सुख लूटा जा सकता था। वह एक सीढ़ी थी, जिसके सहारे अकादमियों के मंच तक चढ़ा जा सकता था और करेंसी नोट थी, जिसे विशिष्ट आयोजनों पर सार्त्र, मार्क्स, ऑस्कर वाइल्टानस्टॉप, चेखव और कामू के माध्यम से भुनाया जा सकता था। अपने देश की पिछली और अगली शताब्दियों के गरीब कवि-लेखकों में इसे भुनाने की औकात नहीं थी। ग्लानि और लज्जावश कबीर, सूर, तुलसी, रत्नाकर, भारतेंदु और महादेवी वर्मा, प्रसाद, निराला तक नेपथ्य में छुप जाया करते थे, राजमार्गों से हट जाया करते थे।

दिक्कत सिर्फ एक थी, हरेक के अपने चश्मे थे—और चश्मा जिस रंग को सही बताता था, दूसरा उसे पूरी तरह खारिज कर देता था।

डफलियाँ भी सबकी अलग-अलग, जिसपर अपने राग गाते तो भी ठीक था, लेकिन बाद के दिनों में सिर्फ डुगडुगी पीटने लगे और इसी फेरफार में हिंदी की डुगडुगी पिट गई और वह पूरी तरह इतिहास की भाषा हो गई। अपने देश के लोगों द्वारा अपने देश की मिट्टी में विलीन हो गई।

दु:ख है कि पिछली सदी की इस भाषा का कोई अवशेष नहीं रहा। इसलिए शोध छात्रों को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। उनकी सुविधा के लिए सूचना दी जाती है कि वे चाहें तो विदेशों के कुछ विश्वविद्यालयों से हिंदी से संबंधित कुछ सामग्री और सूचनाएँ उपलब्ध कर सकते हैं।

□



S • S-Bayang •